International Journal of Applied Research 2016; 2(2): 828-833

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2016; 2(2): 828-833
www.allresearchjournal.com
Received: 10-12-2020
Accepted: 19-01-2020

डॉ. रोहित कुमार
शोकहारा, फुलवड़िया, बेगूसराय
बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. रोहित कुमार
शोकहारा, फुलवड़िया, बेगूसराय
बिहार, भारत

पूर्वी भारत में कृषि का विकास

डॉ. रोहित कुमार

सारांश
पूर्वी भारत में कृषि का उद्भव और विकास अन्य क्षेत्रों की तरह नव–पाषणिक चरण से जुड़ा हुआ है। नव–पाषणिक चरण में पठारी इलाकों के अतिरिक्त मैदानी इलाकों में भी प्रागैतिहासिक मानव का प्रसार हुआ। मैदानी इलाकों की ओर बढ़ने का मुख्य कारण था आरंभिक कृषि का विकास। कृषि के ज्ञान ने भौतिक जीवन में आमूल परिवर्तन ला दिया। अब मानव भोजन संग्राहक से भोजन उत्पादन बन गया तथा स्थिर व्यतीत करने लगा। फलतः स्थायी आवासों का निर्माण हुआ, परिवार संस्था का विकास तथा ग्रामों का जध्नम हुआ।

प्रस्तावना
भारत में नव–पाषाण युग के आविर्भाव तथा विकास के संबंध में हमारा ज्ञान और भी सीमित है। समय–समय पर अनेक पुरातात्विक और भू–तात्विक आँकड़ों के प्रस्तुत किये जाने के प्रयास के बावजूद इस युग का चित्र आज भी हमारे सामने स्पष्ट नहीं हो पाता। पूर्वी भारत की स्थिति तो उड़ीसा के बरहावलंग घाटी में कुचाई[5] के साक्ष्यों को छोड़कर और भी अस्पष्ट है। कुचाई में लघु–पाषाण संस्कृति, जो मूल रूप से आखेटात्मक आर्थिक दशा में थी, के बाद नव–पाषाण संस्कृति का प्रमाण मिलता है। किन्तु, फिर भी दोनों में कोई विकासात्मक क्रम नहीं मिलता।[6] पूर्वी भारत के भिन्न–भिन्न भागों को भौगोलिक अवस्था भी भिन्न–भिन्न है और उनमें एक जैसा विकास का क्रम ढूँढ़ना कठिन है। अध्ययन की सुविधा तथा मोटे तौर पर भौगोलिक विविधता को ध्यान में रखते हुए हमने पूर्वी भारत में कृषि के उद्भव एवं विकास को बिहार, बंगाल, उड़ीसा तथा आसाम राज्यों के आधार पर रेखांकित करने का प्रयास किया है।

बिहार में नवपाषण उपकरण सर्वप्रथम कैप्टन बीचिंग[7] ने बिहार के सिंहभूम में पाया था। दो वर्ष बाद बाल[8] ने भी इसी क्षेत्र से नवपाषाण उपकरण प्राप्त किया। वर्ष 1901 तथा 1904 में बोड्डिंग ने बिहार के संथाल परगना जिले से अनेक नवपाषाण अवशेषों को संग्रहीत किया। इसी प्रकार एस.सी. राय[10] ने राँची के विभिन्न भागों से कई प्रकार के नवपाषाण उपकरणों को प्राप्त किया। ब्रह्मचारी[11] ने मुंगेर के जमालपुर से दो नवपाषाण उपकरण प्राप्त किया। हट्टन[12] ने राजगीर से नवपाषाण उपकरण प्राप्त किया तथा एण्डरसन[13] ने दक्षिण बिहार के चक्रधर पुर क्षेत्र के संजई नदी के नवपाषाण साक्ष्य का पता लगाया। प्रारंभिक नवपाषाण प्राप्ति स्थालों से ऐसा अनुमान लगता है कि नवपाषाण मानव ने दक्षिण बिहार के ऊँचे पठारी क्षेत्रों को अपना निवास स्थान चुना जो नदियों में आने वाली आढ़ से सुरक्षित थे।[14]

यद्यपि नवपाषाण उपकरण दक्षिण बिहार में बहुतायत में मिले हैं परन्तु पूर्ण विकसित नव–पाषाणिक बस्ती का प्रमाण गंगा के मैदानी इलाके में ही मिला है।[15] मैदानी क्षेत्रों में पाई जाने वाली नव–पाषाणिक बस्तियों में चिरांदृ (छपरा), चेचर कुतुबपुर (वैशाली), मनेर (पटना), ताराडीह (बोधगया) और सेनुआर (रोहतास) प्रमुख हैं। इनमें भी ताराडीह और सेनुआर विशुद्ध मैदानी इलाकों में न होकर पहाड़ की तलहटियों में अवस्थित हैं। छोटानागपुर क्षेत्र से पाये गये नवपाषाण उपकरणों और पहाड़ की तलहटियों में विकसित नव–पाषाधिक स्थलों को देखकर यह तर्क स्वीकार करना कठिन प्रतीत होता है कि नव–पाषाणिक बस्तियाँ गंगा के मैदानी इलाकों की ही विशेषता थी। मोटे तौर पर सभी नव–पाषाणिक स्थलों की दो मुख्य विशेताएँ हैं। उनका नदियों के किनारे या निकट स्थित होना तथा आरंभिक कृषि का विकास।[16]

बिहार में नव–पाषाण संस्कृति का प्रसारण कैसे और किस दियाा में हुआ इसको दिखाने के लिए स्पष्ट साक्ष्य का अभाव है। छोटानागपुर के नवपाषाण स्थलों का उत्खनन ही नहीं किया गया है, सिर्फ सर्वेक्षण के आधार पर इस क्षेत्र से प्राप्त उपकरणों की सूचना मात्र दी गया है। अधिक संभावना है कि नवपाषाण संस्कृति का उदय छोटा नागपुर की उपत्यका में ही हुआ है। पहाड़ियों से नीचे समतल क्षेत्रों में नदियों के किनारे ऐसी बस्तियाँ बसनी आरंभ हुई परंतु कृषि की अधिक सुविधा नहीं होने से मानव को मैदानी इलाकों या पहाड़ की तलहटियों को ओर बढ़ना पड़ा।

ऐसा प्रतीत होता है कि नवपाषाण मानव छोटानागपुर की पहाड़ियों से विभिन्न समूहों में बाहर निकला तथा गंगा के दक्षिण तथा उत्तर के मैदानी इलाकों की तरफ अग्रसारित हो जाता हुआ।[17] चिरांड बिहार में नवपाषाण संस्कृति का अधिकेंद्र प्रतीत होता है और हमारे लिए इस स्थल का विस्तृत अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। जहाँ तक दक्षिण बिहार का प्रश्न है हम संजय, स्वर्ण रेखा तथा खरखी नदी घाटियों से प्राप्त स्थलों का विस्तारपूर्ण अध्ययन करेंगे।

संजय घाटी के दोनों तरफ पहाड़ियों की श्रृंखला है जिसके बीच एक विस्तृत तरंगी मैदानी क्षेत्र अवस्थित है।[18] पश्चिम में लोटापहाड़ तथा पूर्व में सोनुआ के बीच लगभग तीन से पाँच किलोमीटर चौड़ी है। आगे पूर्व की तरफ छोटी–छोटी पहाड़ियों का अवरोध है। इन अवरोधों से निकलने पर घाटी की चौड़ाई पंद्रह से बीस किलोमीटी हो जाती है जो चक्रधरपुर से पूर्व चाईबासा के मैदानी इलाके से जुड़ी है। संजय घाटी से प्राप्त महत्त्वपूर्ण नवपाषाण स्थलों में सोनुआ, लोटापहाड़, बरदापुर, बारूडीह, एकरी डूंगी तथा सिनी महत्त्वपूर्ण हैं।[19] बारूडीह में परीक्षण के तौर पर किये गये उत्खनन में काफी मात्रा में कार्बोनाइड चावल प्राप्त हुए हैं। इस चावल की प्रजाति को कटक में स्थित चावल शोध संस्थान ने उड़ीसा सटिवा कृषि जन्य प्रजाति माना है।[20] यह प्रजाति वन्य किस्म और कृषि जन्य किस्म के मेल का परिणाम प्रतीत होता है। संजय घाटी के अन्य महत्त्वपूर्ण स्थल डूंगी से प्राप्त अवशेषों से ऐसा अनुमान होता है कि यहाँ के लोगों का जीवन काफी हद तक कृषि पर आधारित था।[21]

संजय घाटी के अलावा दक्षिण बिहार में स्वर्ण रेखा घाटी में अनेक महत्त्वपूर्ण नवपाषाण स्थान प्राप्त हुए हैं। 1961 में स्वर्ण रेखा और खरकाई में परातात्विक अन्वेषण किये गये परंतु दुर्भाग्यवश एक स्थल सेरायकेला[22] को छोड़कर किसी अन्य स्थल के बारे में कोई विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है। 1976 में स्वर्ध रेखा घाटी में एक अन्य स्थल धोरांगी प्रकाश में आया।[23] स्वर्ण रेखा घाटी के अन्य नवपाषाण स्थलों में चांडिल, घाटशिला और चकुलिया का नाम लिया जा सकता है।[24]

1967 में एलचिन ने संथाल परगना में बोड्डिंग द्वारा 1900 से 1930 के बीच संग्रहीत नवपाषाण अवशेषों का अध्ययन प्रस्तुत किया।[25] संथाल परगना के नवपाषाण अवशेष पूर्व की तरफ बहने वाली बंसलोई तथा अजय नदियों के बीच प्राप्त हुए हैं और मोटे तौर पर ऐ ऐसे सांस्कृतिक समूह का परिणाम प्रतीत होते हैं जो सीमित कृषि पर आधारित जीवन व्यतीत करते थे। जहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि संथाल परगना तथा दक्षिण बिहार के अनय नवपाषाण स्थलों से अनाज के अवशेष बहुत कम मात्रा में प्राप्त हुए हैं। ऐसी संभावना है कि इन स्थलों पर कृषि का प्रथम प्रयोग उस समय प्रारंभ हुआ जब वे अन्न–संग्रह की अवस्था में थे। कृषि क्षेत्र में प्रयास संभवतः इतना व्यापक नहीं था कि कृषि पर आधारित अर्थ–व्यवस्था प्रारम्भ हो सके।[27]

कृषि की अधिक सुविधा नहीं होने से मानव को मैदानी इलाकों या पहाड़ की तलहटियों की तरफ बढ़ाना पड़ा। ऐसा प्रतीत होता है कि नवपाषाणकालीन मानव छोटा नागपुर की पहाड़ियों से विभिन्न समूहों में बाहर निकला। इसकी एक शाखा ताराडीह[28] में बसी जहाँ कृषि के साथ ही पाषाणोपकरण और अस्थि–उपकरण बनने की सुविधा थी। दूसरी शाखा चेचर कुतुबपुर[29] में बसी जो गंडक के उत्तरी किनारे पर थी। वहाँ से इनका प्रसार चिरांड[30] और गंगा पार कर मनेर में हुआ।[31] गंगा का यह मैदान गंगा नदी द्वारा लाई गयी जलोढ़ पानी कछारी मिट्टी से निर्मित हुआ है जो काफी उर्वर है। हमारे अध्ययन के लिए चिरांड और सेनुआर (रोहतास) और चेचर कुतुबपुर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थल है।

चिरांड[32] आधुनिक छपरा जिले से आठ किलोमीटर दूर गंगा और घाघरा नदी के संगम पर स्थित है। उत्खनन से प्राप्त सबसे प्रारंभिक चरण में ही यहाँ नवपाषाण संस्कृति का पता चलता है। वस्तुतः नवपाषाण चरण लगभग तीन दशमलव पाँच मीटर मोटा है जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि स्थल दीर्घकाल तक नवपाषाण चरण में रहा था। संभवतः यह स्थल प्रारंभ में जंगलों से आच्छादित था तथा धीरे–धीरे इसे कृषि योग्य बनाया गया। प्राप्त अवशेषों से यह स्पष्ट है कि चिरांड की अर्थव्यवस्था का आधार विस्तृत था। फिर भी जीवन निर्वाह मुख्यतः अन्न उत्पादन पर आधारित था।[34] अवशेषों के मलबे से चावल, धान की भूसी, गेहूँ जौ, मटर आदि के जले हुए अवशेष प्राप्त हुए हैं। इन अन्नों में केवल चावल की वन्य और कृषि जन्य (औराइजा रूफीपोगान, ओरा इजा सेटाइवा) दोनों प्रकार के चावल की पहचान की जा सकी है। ऐसी संभावना व्यक्त की गयी है कि चिरांडवासियों ने वार्षिक वन्य चावल को संग्रहित कर धीरे–धीरे इसके कृषि प्रजाति को विकसित किया।[35]

अन्य अनजों के संबंध में कोई निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है। इस संबंध में अगर भारत में कुछ अन्य उत्पादनों की उत्पत्ति और विकास को अगर रेखांकित किया जाय तो इस पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है। मूंग की उत्पत्ति का केन्द्र भारत को माना जाता है। वस्तुतः मूंग की वन्य प्रजाति अभी भी उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र में प्राप्त है। इसी प्रकार जौ, जिसकी उत्पत्ति का केन्द्र पश्चिम एशिया माना जाता है का विकास निश्चित रूप से उत्तर भारत और दक्षिण में रेखांकित किया जा सकता है। हड़प्पा के विभिन्न स्थलों के अलावा उत्तर प्रदेश के अतीरंजीखेरा से जौ के अवशेष प्राप्त इन अनाजों की उत्पत्ति पर हालांकि निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि चिरांड निवासी फसल के चक्र से परिचित थे। इसका प्रमाण खरीफ और रबी दोनों फसल के अवशेषों को माना जा सकता है।[36] यह भी संभावना व्यक्त की गई है कि चिरांड के लोग कृषि के विभिन्न चरणों से परिचित थे और उन्हें फसल बोने और काटने के तकनीक का ज्ञान था।[37] स्पष्ट है कि चिरांड के अवशेषों द्वारा पूर्वी भारत में कृषि की उत्पत्ति और विकास पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

बिहार के अन्य महत्त्वपूर्ण नवपाषाण स्थल सेनुआर[38] में चावल, जौ, मटर, मसूर और कुछ मोटे अनाजों की खेती के प्रमाण मिले हैं। इस स्थल से गेहूँ और घास मटर की अनेक किस्में बस्ती के उच्च स्तरों से प्राप्त हुई हैं। वस्तुतः सेनुआर के उत्तरवर्ती नवपाषाण–ताम्रपाषाण कालीन लोगों ने अपने से पहले के लोगों द्वारा उगाई जाने वाली फसलों के अलावा चने और मूंग की खेती भी शुरू कर दी थी। सेनुआर की नवपाषाण संस्कृति पर विंध्यपर्वतीय क्षेत्र की संस्कृति का अधिक प्रभाव दिख पड़ता है। चेचर कुतुबपुर (वैशाली)[39] में भी नवपाषाण चरण में कृषि के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं।

बिहार के नवपाषाण स्थलों के सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि इसके ज्यादातर केन्द्र प्रारंभिक स्थल दक्षिण बिहार के छोटा नागपुर क्षेत्र में अवस्थित थे। आगे चलकर नवपाषाण मानव मैदानी इलाके की तरफ विभिन्न समूहों में फैला। संजयी घाटी इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। इसमें पायी जानेवाली वन संपदा और मैदान के छोटे–छोटे टुकड़ों ने कृषि के प्रारंभिक प्रयोग के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि तैयार की। जहाँ तक गंगा के दक्षिण और उत्तर में स्थित मैदानों का प्रश्न है वे कृषि के लिए काफी आकर्षक क्षेत्र था। चिरांड, चेचर, कुतुबपुर तथा सेनुआर इस दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि इन स्थलों पर कृषि कार्य एक लम्बे समय तक सीमित अवस्था में रहा। इसका कारण संभवतः कम जनसंख्या और आवश्यकता की कमी माना गया है।[40]

पश्चिम बंगाल से प्राप्त नवपाषाण स्थलों को तीन प्रमुख भौगोलिक क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है– (1) उत्तरी पठारी क्षेत्र, (2) उत्तरी पठारी और दक्षिण के जलोढ़ के बीच का क्षेत्र और (3) दक्षिण के जलोढ़ (कछारी) क्षेत्र। उत्तरी पठारी क्षेत्र में सबसे पहले 1865 में वाल्श 41 कलिमपोंगे के पहाड़ों में नवपाषाण उपकरण

पाये थे। आगे चलकर बंगाल के पुरातत्त्व विभाग ने इस क्षेत्र में अन्वेषण किया और कलिमपोंग के निकट दुर्गाबस्ती तथा सिंदिवोंग नाम स्थानों से नवपाषाण अवशेष प्राप्त किया।[42] नवपाषाण संस्कृति के विकास में इस क्षेत्र के महत्त्व को देखते हुए पश्चिम बंगाल पुरातत्व विभाग ने पुनः इस क्षेत्र का विस्तृत सर्वेक्षण किया जिसमें पेदोंग, पुनदोंगे और बदमतन जैसे स्थल खोजे गये।[43] प्राप्त अवशेषों के अध्ययन के उपरांत दासगुप्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कलिमपोंग के नवपाषाण स्थलों पर प्रारंभिक खेती के साक्ष्य हैं।[44] इन नवपाषाण स्थलों की उत्पत्ति संबंधित हमें कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। पुरापाषाण और मध्यपाषाण के कोई भी स्थल इस क्षेत्र में ज्ञान नहीं है, अतः इसके विकास के क्रम को रेखांकित करना कठिन है। कुछ उपकरणों से कलिमपोंग के नवपाषाण संस्कृति पर आसाम, काश्मीर, चीन और दक्षिण–पूर्व एशिया के प्रभाव को माना गया है।[43] इस संदर्भ में इस क्षेत्र के उत्तरी भाग में पुर्नभाव नदी पर स्थित नवपाषाण स्थल बानगढ़ महत्त्वपूर्ण है।[46] हालांकि यहाँ से केवल एक सेल्ट प्राप्त हुआ परन्तु यह उत्तर बंगाल के डेल्टा क्षेत्र को पूर्व इतिहास के मानचित्र में प्रवेश दिलाता है। इस प्रकार अगर उत्तर बंगाल के पठारी क्षेत्रों के विस्तार से पुरातात्विक अन्वेषण हो तो इस क्षेत्र के नवपाषाण संस्कृति और कृषि पर हमें कुछ निश्चित जानकारी प्राप्त हो सकती है।

जहाँ तक पश्चिम बंगाल के दूसरे भौगोलिक क्षेत्र का प्रश्न है, जो उत्तरी पठारी और दक्षिणी जलोढ़ क्षेत्र के बीच पड़ता है, वह नवपाषाण संस्कृति के दृष्टिकोण से विशेष महत्त्व का है। इस क्षेत्र में नवपाषाण साक्ष्य मुख्य रूप से कंग्यबती, तार फेनी, सिलवती, स्वर्ण रेखा और दामोदर नदी घाटी से प्राप्त हुए हैं।[47] इनमें लगभग दस स्थल मिदनापुर से झाठ स्थल बाँकुरा और सात स्थल पुरूलिया जिलों में पाये गये हैं। इस क्षेत्र में स्थित कुछ अन्य जिलों जैसे बीरभूमि और बर्दनाम में कुछ स्थल मिले हैं। प्राप्त अवशेषों में सीमित स्ता पर कृषि होने का अनुमान मिलता है। इन स्थ्ज्ञलों पर बड़ी बस्तियों का अभाव संभवतः इस क्षत्रे में कृषि कार्य करने वालों का कोई स्थायी निवास नहीं था और वे अस्थायी तौर पर किसी स्थान पर कृषि कार्यों के लिए रहते थे। सौभाग्यवश तारफेनी घाटी तथा पुरुलिया के कुछ क्षेत्रों से काफी संख्या में मध्यपाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। इन उपकरण में हुए तकनीकी परिवर्तनों से कृषि उत्पादन का अनुमान लगाया जा सकता है। पश्चिम बंगाल के इस क्षेत्र में नवपाषाण स्थलों की संख्या में एकाएक गिरावट दिखाई पड़ती है। संभवतः इस क्षेत्र की जनसंख्या में गिरावट आई। अपूर्ण अन्वेषरण के कारण इा पक्ष पर निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है।[49]

पश्चिम बंगाल के नवपाषाण स्थलों का तीसरा प्रमुख केन्द्र उसके दक्षिण का विशाल जलोढ़ मैदान है। तामलुक इस क्षेत्र का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थल है।[50] यह सही है कि परीक्षण के तौर पर किये गये उत्खनन में कोई बस्ती के अवशेष प्राप्त नहीं हुए हैं परनतु सबसे निचले स्तर पर नवपाषाण उपकरणों की प्रापित इस बात का सूचक है कि इस क्षेत्र में एक निश्चित नवपाषाण सांस्कृतिक स्तर था। ऐसी संभावना है कि इस क्षेत्र की उर्वरता का लाभ उठाते हुए यहाँ के लोगों ने सीमित स्तर पर कृषि कार्य प्रारंभ किया। तामलुक का महत्त्व ऐतिहासिक काल में बना रहा। यह भारत और दक्षिण–पूर्व एशिया के बीच व्यापार का एक प्रमुख बन्दरगाह था तथा ताम्रलिप्ति के नाम से जाना जाता है।

इस क्षेत्र का दूसरा नवपाषाण स्थल से आधुनिक बगनान से लगभग पाँच किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ से एक नवपाषाणकालीन त्रिकोणीय सेल्ट प्रापत हुआ है।[51] परगना जिले के निचले इलाके के देउलपोटा तथा हरिनारायणपुर से भी नवपाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। [52] ऐसी संभावना है कि बिहार की भाँति नवपाषाण मानव पश्चिम बंगाल के डेल्टा क्षेत्र के जलोढ़ मैदान की तरफ आकृष्ट हुए। पेड़–पौधे के कोई अवशेष प्राप्त नहीं होने के कारण यह भी अनुमान होता है कि यहाँ कृषि कार्य सीमित समय के लिए ही किया जाता है।

स्पष्ट है कि बंगाल के नवपाषाण लोग सर्वप्रथम उत्तर के पठारी क्षेत्र में स्थायी रूप से निवास करना शुरू किये और फिर इस क्षेत्र से अन्य स्थलों की तरफ आगे बढ़े। उनके आगे बढ़ने की दशा को उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर तय करना कठिन है। फिर भी उत्तर के पठारी क्षेत्र और दक्षिण के जलोढ़ क्षेत्र के बीच का मैदान नवपाषाण लोगों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना रहा। ऐसी संभावना है कि अन्न–संग्रह के अंतिम चरण में यहाँ के लोग इस क्षेत्र के आस–पास पाये जाने वाले वन्य प्रजाति का कृषि कासर्यों के लिए प्रयोग प्रारंभ किया। इस क्षेत्र में वस्तुतः वन्य प्रजाति के कई किस्म पाये जाते हैं जो कृषि जन्य अनाज के किस्मों का पूर्वज माने जा सकते हैं। पश्चिम बंगाल के दक्षिण में स्थित जलोढ़ क्षेत्र संभवतः अपनी उर्वता के कारण नवपाषाण लोगों के आकर्षण का केन्द्र रहा। इस क्षेत्र से नवपाषाण स्थलों की कम जानकारी का एक कारण यह हो सकता है कि ये स्थल कछारी मिट्टी के अन्दर दब गये हों।[53]

उड़ीसा में नवपाषाण संस्कृति का पुनर्निर्माण एक कठिन कार्य है। वहाँ न तो नवपाषाण स्तर की कोई तिथि निर्धारित हुई है और न ही ढंग से उत्खनन हुआ है। आर. पी. चन्दा ने 1923–24 में मयुरभंज जिले में बैदीपुर नामक स्थान से नवपाषाण उपकरण प्राप्त किया था।[54] आगे चलकर इसी जिले में कुचाई[65] नामक पर हुई खुदाई ने उड़ीसा के नवपाषाण संस्कृति के पुनर्निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस स्थल से हल्के पॉलिश किये गये पत्थर के औजार जैसे गोल आदिम कुल्हाड़ियाँ और वसूले, आयताकार अथवा अंडाकार अनुप्रस्थ काट तथा चक्कियों और लोढ़ों जैसे खाद्य संसाधन इकाइयों का सुबाह्य आकार प्राप्त हुआ है।

एक भौगोलिक इकाई के रूप में असम, बिहार, उड़ीसा और बंगाल से बिल्कुल अलग है। इस राज्य के ऊपरी भाग में लुब्बाक[56] ने 1867 में सर्वप्रथम नवपाषाण उपकरण प्राप्त किया था। 1870 में स्टील[57] ने नामासंग नागा ग्राम से नवपाषाण उपकरणों को संग्रहित किया। इसी प्रकार 1872 में बैरन[58] ने नागा पहाड़ियों से दो नवपाषाण उपकरण प्राप्त किये। 1917 में एक ब्रिटिश चाय के बगान के स्वामी पेरी[59] ने तेजपुर के पास एक नाले से कई नवपाषाण उपकरण प्राप्त किया जिसे कोगिन ब्राउन[60] ने बर्गीकृत किया। असम के विभिन्न क्षेत्रों से हट्टन, मिल्स, वाल्कर, ग्रेस और पैंसी ने अनेक नवपाषाण साक्ष्यों की सूचना दी है।[61] 1960 में दानी ने असम के नवपाषाण उपकरणों का विशेष अध्ययन किया।[62] उपलब्ध कच्चे माल और प्राप्त उपकरणों के बीच जनदीक संबंध को देखते हुए दानी ने असम के नवपाषाण साक्ष्यों को छः भौगोलिक क्षेत्रों में बाँटा। शर्मा 63 ने दानी के इस वर्गीकरण को सही नहीं माना और उन्होंने उपकरणों के तकनीकी पक्ष को ध्यान में रखते हुए इसे वर्गीकृत किया।

असम की नवपाषाण संस्कृति की विशेषता है स्कंधयुक्त कुल्हाड़ियाँ, गोलाकार छोटे घर्षित कुल्हाड़े, रज्जु चिन्हित मृदभांड जिन पर बहुत अधिक स्फटीक कण चिपकाए गए होते थे। उत्तरी कच्छार पहाड़ियों में देवजाली हाडिंग में किये गये उत्खननों में भी सभी उपकरण प्राप्त हुए हैं। ये वस्तुएँ इस प्रकार की हैं जो चीन और दक्षिण–पूर्व एशिया में व्यापक रूप से पाये जाते हैं। तर्क के आधार पर दानी ने असम के नवपाषाण उपकरण को इन क्षेत्रों से जोड़ा है।[65] इसी प्रकार कृष्णास्वामी ने भी असम के नवपाषाण उपकरणों का मूल केन्द्र मलाया और झण्डी–चीन माना है। गारों पहाड़ियों से प्राप्त पत्थर के उपकरणों से असम के नवपाषाण संस्कृति के दक्षिण भारतीय सम्पर्क की भी सम्भावना दिखलाई पड़ती है।

संकालिया ने ऐसी संभावना प्रकट की है कि भविष्य में होने वाले अन्वेषणों में असम पूर्वी एशिया तथा प्रायद्वीपीय नवपाषाण संस्कृति का मिलन क्षेत्र सिद्ध हो सकता है। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर

असम के नवपाषाण संस्कृति का चीन और दक्षिण–पूर्व एशिया अथवा दक्षिण भारत से सादृश्यता पर निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि इनमें बहुत अधिक कालानुक्रमिक अन्तर है। असम के नवपाषाण चरण का तिथि निर्धारण अस्थायी रूप से 2000 ई.पू. के आस–पास किया गया है। नवपाषाण भौतिक संस्कृति पूर्वकाल की अपेक्षा अधिक समुन्नत थी। पूर्वी भारत की नवपाषाण संस्कृतियाँ भी इस तथ्य को रेखांकित करती है। इस समय की अर्थव्यवस्था सीमित कृषि और आखेट पर आधारित थी। कुछ नई विशेषताएँ इस समय प्रकट होती है। जैसे, स्थायी आवासों का निर्माण, मिट्टी के बर्तन, मूर्तियाँ तथा आभूषण बनाने के कला का विकास। पत्थर के उपकरण जैसे कुल्हाड़ी, मूसल, पेषणी, वाणग्र, हथोड़े आदि के अतिरिक्त हड्डी के उपकरण और आभूषण भी बनाये गये थे। अधिकांश उपकरण मृगश्रृंग या हिरण की हड्डियों से बने थें, परन्तु इसके अलावे हाथी, गैंडा, भैस, बैल और कछुए की हडड्यिां भी प्रयोग में लाई गई थे। कृषि का स्वरूप आरंभिक था। हल से खेती का प्रमाण नहीं मिलता है। धान मटर, चना, जौ, गेहूँ, कोदी तथा मसूर की खेती होती थी। अनाज को कूट–पीस कर खाने योग्य बनाया जाता था। पशुपालन का आरम्भ भी इसी समय हुआ। पहली बार इसी चरण में मिट्टी के बर्तन बनाए गये। बर्तन हाथ से अथवा चाक की सहायता से बनाये जाते थे। और अधिकांशतः लाल, भूरे, काले और लाल होते था। अनेक मृदभांड पर ज्यामितिय चित्र मिलते हैं। कुछ बर्तनों पर चिपकवाँ अलंकारण भी पाया गया है। रस्सी की छाप वाला बर्तन बिहार में तारडीह और सुनआर से प्राप्त हुए है। इससे यह अनुमान होता है कि संभवतः यह कला को लडीहवा (बेलन घाटी) और महागंरा (विंध्य पर्वत) से बिहारवासियों ने सीखा 69। इससे विध्य क्षेत्र के नवपाषाण संस्कृतियाँ और दक्षिण बिहार के नवपाषाण संस्कृतियाँ के बीच सम्पर्क परिलक्षित होता। परन्तु यह सम्पर्क चिरांड, चेचर, कुतुबपुर अथवा मनेर तक नहीं पहुँच सका। इन स्थानों से रस्सी छाप वाले बर्तन नहीं मिलते हैं।

दुर्भाग्यवश पूर्वी भारत के ज्यादातर स्थलों विशेषकर उड़ीसा में नव–पाषाण स्तर की न तो तिथि निर्धारित की गई हैं और न हीं ढंग से उत्खनन हुआ है। अनेक स्थलों के उत्खननों का विस्तृत रिपोर्ट भी अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। फिर भी जो साक्ष्य उपलब्ध है वे विकसित नवपाषाण संस्कृति का परिचय देते है। वस्तुतः इन संस्कृतियों ने ही ताम्रपाषाण संस्कृतियों के उदय और विस्तार की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। ताम्र–पाषाण चरण में पहली बार ताम्बा धातु का व्यवहार आरंभ हुआ परंतु यह उपयोग बड़े पैमाने पीर अथवा उत्पादन के कार्यों में नहीं हुआ। बिहार में ताम्र–पाषाण ससंस्कृतियाँ सोनपुर, ताराडीह (मनेर) (पटना, सेनुआर, रोहतास, चिरंद, छपरा, चेचर–कुतुबपुर, वैशाली तथा ओरियप, भागलपुर में मिले हैं। इसी प्रकार पश्चिम बंगाल में पांडु राजार ढीबी, महिसदल, नानुर, हरेईपुर, बीरपुर तथा थूसीपुर, बांकुरा, थथल ताम्र–पाषाण संस्कृतियों के परिलक्षित करते हैं।

पूर्वी भारत के ताम्र–पाषाण संस्कृति के बस्तियों से कई महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती है। चिरांड और सोनपुर तथा पांडु राजार ढीबी में कच्चदी ईटों से मिर्मित दीवार के अवशेषप मिले हैं। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि इस काल के घर नष्ट होने वाले पदार्थ जैसे नरकट, बॉस या मिट्टी के बने होते थे। रेत और कंकड़ को मिलाकर घर की सतह बनाये जाते थे। यद्यपि सोनपुर और पांडु राजार ढीबी में फर्श को चिकना करने के लिए चूने के प्रयोग का प्रमाण मिलता है। पूर्व के ताम्र–पाषाण संस्कृति के एक अन्य विशेषता काले और लाल मृदभांड है। बिहार के ताम्र–पाषाण संस्कृति की दो विशेषताएँ हमारा ध्यान आकर्षित करती है। प्रथम, कुछ स्थलों पर तो ताम्र–पाषण चरण से ही आबादी के प्रमाण मिले हैं। जैसे, आरियप, सोनपुर तो अन्य स्थानों जैसे सेनुआर, ताराडीह, मनेर, चिरांड, चेचर–कुतुबपुर में नवपाषाण स्तर के बाद उसी क्रम में ताम्र–पाषाण संस्कृति के अवशेष मिलते हैं। सबसे आश्चर्यजनक तथ्य तो यह है कि सिंहभूम और मानभूम में जहाँ ताम्र–अयस्क उपलब्ध था वहाँ विकसित ताम्र–पाषाण संस्कृति का प्रमाण नहीं मिलता है।

जहाँ तक कृषि का प्रश्न है पूर्वी ताम्र–पाषाण संस्कृति के सम्पूर्ण साक्ष्य से चावल पीर आधारित एक विस्तृत ग्राम–संस्कृति का प्रमाण मिलता है जो लगभग ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी के मध्य जितनी पुरानी है। चावल के दाने चिरांड, सोनपुर और महिस्दल से पाये गये है। कृषि जन्य धान बर्तन में पाये गये हैं। पाण्डु राजार ढीबी में ऐसे अवशेष मिले है। चावल के प्रयोग का सर्वप्रथम प्रमाण थाइलैंड में मिलता है। जहाँ इसकी तिथि 3200 ई. पू. निर्धारित की गई है।[76] परन्तु कोल्टहीवा उत्खनन से प्राप्त साक्ष्यों से भारत में चावल उपजने की प्रथम ज्ञात तिथि 4500 ई. पू. प्रमाणित होती हैं कोल्डहीवा उतखनन से जो चावल के अवशेष मिले हैं यदि वे कृषिजन्य चावल के दाने हैं और उसके लिए निर्धारित उपरोक्त तिथि यदि सत्य है, तो यह निश्चिय ही मानना पड़ेगा कि चावल की खेती का यह सर्वप्रथम ज्ञात तिथि है[77] तथा भारत इसके उत्पत्ति और विकास का केन्द्र माना जा सकता है। जहाँ तक पूर्वी भारत का प्रश्न है चावल की ओराइजा सेटिवा लिन्न प्रजाति चिरांड (2000–1300 ई. पू.) तथा पांडु राजार दिबी (2000 ई. पू.) जैसे स्थलों से ज्ञात है। सोनपुर (800–600 ई. पू.) तथा महिस्दल (700 ई. पू. के पहले) से भी कृषिजन्य चावल के साक्ष्य मिले हैं। ऐसी स्थिति में हम इस चावल संस्कृति वाले क्षेत्र में बेलन घाटी। (कोल्डीहवा तथा चौपानी भांडो) के साथ सम्मिलित कर सकते हैं। पूर्वी भारत में जो अन्य अनाज उगाये जाते थे उनमें गेहूँ, जौ, चावल और मसूर सम्मिलित थे। इस प्रकार हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि पूर्वी भारत उत्तर प्रदेश के बेलन घाटी के साथ एक महत्त्वपूर्ण खाद्य उत्पादन विशेषकर चावल का क्षेत्र था। वास्तविकता में यह चावल उत्पादन का स्वतंत्र क्षेत्र था और इस पी किसा वाह्य प्रभाव को ढूढ़ना उचित नहीं होगा।[80]

भारतीय पुरातत्वज्ञों पूर्वी भारत में एक विशिष्ट ताम्र–पाषाण संस्कृति तथाकथित ताम्र–संचय तथा गेस्य बर्तन संस्कृति का पता लगाया है।[81] इस संस्कृति का संस्थापक कृषिजीवी थे, लेकिन शिकार और मछली पकड़ने का अब भी उनके जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान था। वे कई प्रकार के ताम्र–पाषाण उपकरण बनाते थे, जैसे फरसे, छेनियां, वसूले और मत्स्य भाले। इस संस्कृति के संस्थापकों के संबंध में कई सिद्धांत प्रस्तुत किये गये हैं जैसे, मध्य भारत से कबीले पूर्व की तरफ देशातंर कर गये[82] या इसका मूल हड़प्पाई था।[83] पुरातत्वज्ञ हाइने गेल्दनर[84] की यह मान्यता थी कि इस ताम्र संचय संस्कृति के संस्थापक आर्यगण थे। हाल के अनुसंधान ताम्र संचय संस्कृति को अधिकाधिक निर्णायक रूप से मुंडा कबीलों के पूर्वज से संबंध बने हैं।[85]

बिहार सहित पूर्वी भारत की ताम्र–पाषाण संस्कृति उतनी अधिक विकसित प्रतीत नहीं होती है जिनकी कि पश्चिमी और मध्य भारत की ताम्र–पाषाण संस्कृतियाँ।[86] ताम्र–पाषाण मध्य भारत में जैसे अहर, गिलुंद, नागदा आदि स्थलों पर आँवा में पकाई गई ईटों का निम्रण मकानों में होने लगा था परनतु पूर्वी भारत में अभी भी बेंत, बाँस, सरकंडा तथा फूस के ही मकान बने। सिर्फ चिरांड के प्रथम काल के द्वितीय चरण से जो नवपाषाण से ताम्र–पाषाण संस्कृति में परिवर्तन के द्योतक हैं, कच्ची इटों से निर्मित एक दीवार प्रकाश में आयी है।[88]

निष्कर्ष

अर्थव्यवस्था अभी भी कृषि, मछली पकड़ने और जानवरों के शिकार पर आधारित था। ताम्बा का व्यवहार आरंभ होने के बावजूद पत्थर और अस्थि के उपकण और वस्तुएँ व्यवहृत होते रहे। मिट्टी के बर्तन (काले और लाल) पूर्ववत् हाथ और चाक की सहायता से बनते रहे परंतु इस समय के बर्त्तनों में थालियाँ,

तश्तरियों और जारनुमा बर्त्तनों की संख्या बढ़ी। इससे यह अनुमान होता है कि भोजन ठोस पदार्थों का अनुपात बढ़ रहा है। यह सही है कि पूर्वी भारत की ताम्र–पाषाण संस्कृति पश्चिमी और मध्य भारत की तुलना में अधिक विकसित नहीं है परन्तु बिहार में चिरांड से प्राप्त अवशेष निश्चित रूप से महत्त्व के हैं। यहाँ से प्राप्त अस्थि एवं प्रस्तर उपकरण, गारे और सरकंडे घरों के अवशेष तथा चावल और अन्य फसलों का समृद्ध संग्रह निश्चित रूप से नव–पाषाण एवं ताम्र–पाषाण संस्कृति के स्पष्ट साक्ष्य माने जा सकते हैं। पश्चिम बंगाल के स्थलों पांडु राजार ढीबी और महिस्दल के सम्पूर्ण साक्ष्यों के आधार पर इस क्षेत्र में भी चावल पर आधारित एक विस्तृत ताम्र–पाषाण युगीन ग्राम संस्कृति का पता चलता है। उड़ीसा में कुचाई स्थल के साक्ष्य भी महत्त्वपूर्ण हैं परन्तु दुर्भाग्य से इस क्षेत्र में न तो नव–पाषाण स्तर की कोई तिथि निध्रारित की गई है और न ही ढंग से उत्खनन हुआ है। इस प्रकार इसमें कोई संदेह नहीं है कि पूर्वी भारत के कुछ हिस्से, इस इलाके के ताम्र–पाषाण युग में और उससे पहले के नव–पाषाण युग में खूब बसे हुए थे।

संदर्भ

1. गार्डन चाइल्ड, मैन मेक्स हिमसेल्फ, ब्रिटेन 1965, पृ. 86।
2. अक्षय लाल यादव, प्राचीन भारत में कृषि, वाराणसी, पृ. 17।
3. श्री राम गोयल, प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ, गोरखपुर, 1961, पृ. 70।
4. यादव, पूर्व–उद्धृत, पृ. 17–18।
5. वी.एन. मिश्रा
6. यादव, पूर्व–उद्धृत, पृ. 18।
7. कैप्टन बीचिंग, नोट्स आन सम स्टोव इम्प्लीमेन्टस फ्राम दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ सिंहभूम, प्रोसीडिंग्स ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, 1868, पृ. 177।
8. वी.बाल, स्टोन इम्प्लीमेन्ट्स डिस्कवर्ड इन सिंहभूम, पूव्र–उद्धृत, 1870, पृ. 268।
9. पी. ओ. वोड्डिंग, एंशियन्ट स्टोन इम्पलीमेन्ट्स इन दि संथाल परगनास, जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, 1901, पृ. 17–22।
10. एस. सी. राय, नोट्स ऑन सम ऑफ दि सटोन इम्प्लीमेन्ट्स फाउन्ड इन राँची डिस्ट्रिक्ट, जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, जिल्द.प्प, पटना, 1916, पृ. 61–77।
11. यू एन. ब्रह्मचारी, टू नियोलिथिक स्टोन इम्प्लीमेन्ट्स फाउन्ड इन दि टेंक एट जमालपुर (मुंगेर), जे. ए. एस. बी. जिल्द ग्प्प्ए कलकत्ता, 1926, पृ.136।
12. आई. ए. आर., 1963–64, 1965–66, पृ.–8।
13. जी. डब्लू. एण्डर्सन, नोट्स ऑन प्री–हिस्टोरिक सटोन इम्प्लीमेन्ट्स फाउन्ड इन सिंहभूम डिस्ट्रिक्ट, जे. वी. ओ. आर. एस. जिल्द–प्प पटना, 1917, पृ.–349–62।
14. एल.ए. नारायण, दि नियोलिथिक कल्चर्स ऑफ ईस्टर्न इण्डिया, डी.पी. अग्रवाल तथा डी. के. चक्रवर्ती, पूर्व उद्धृत, पृ.–301।
15. कामेश्वर प्रसाद, बिहार का आरंभिक इतिहास–समस्याएँ एवं संभावनाएँ, अध्यक्षीय भाषण (प्राचीन काल), पंचम अधिवेशन, बिहार इतिहास परिषद, नरकटियागंज, 1994, पृ. 3।
16. वही, वही, पृ. 3–4।
17. ए. के. घोष, प्री–हिस्ट्री स्टीज इन ईस्टर्न इण्डिया, साइन्स एण्ड कल्चर, जिल्द 27, संख्या 8, कलकत्ता, 1961, पृ. 369–75।
18. विस्तार के लिए देखे आइए ए. आर., 1959–60, पृ. 14, 1961–62, पृ. 8, 1962–63, पृ. 9।
19. डी. सेन, प्रोफइल ऑफ ए प्रीलिट्रेट कल्चर इन दी संजय भैली, सिंहभूम, जर्नल ऑफ इ इण्डियन एन्थ्रोपोलॉजिकल सोसाइटी, जिल्द–4, 1969, पृ. 19–20, डूंगी–प्रोफाइल ऑफ ए नियोलिथिक साइट, पूर्व उद्धृत, जिल्द 10, 1975, पृ. 159–64।
20. रेया रे, एंशियन्ट सेटलमेंट पैटर्न्स ऑफ ईस्टर्न इण्डिया कलकत्ता, 1987, पृ. 243।
21. विस्तार के लिए देखें डी. सेन., पूर्व उद्धृत, 1975, पृ. 159–164।
22. आई. ए. आर. 1961–62, पृ. 8।
23. वही, 1975–76, पृ. 9; 1976–77, पृ. 13–14।
24. रेबा रे, पूर्व–उद्धृत, पृ.246।
25. एफ.आर. एलचिन, दि नियोलिथिक स्टोन इन्डस्ट्रीज ऑफ दि स्कूल ऑफ ओरियन्टल एण्ड एफ्रीकन स्टडीज, जिल्द 25, 1962, लन्दन, पृ. 306–30
26. रेबा रे, पूर्व–उद्धृत पृ. 246।
27. वही, पृ. 250।
28. ताराडीह, बोध गया में स्थित है जहाँ सीताराम राय, नसीम अख्तर और ए. के. प्रसाद ने खुदाई की है।
29. आई. ए. आर. 1977–78, पृ. 7।
30. वही, 1962–63, पृ.6, 1970–71, पृ. 7।
31. कामेश्वर प्रसाद, पूर्व–उद्धृत, पृ. 4।
32. बी. एस. वर्मा, एक्सकेवेशन्स एट चिरांड, पुरातत्व संख्या–4, 1970–71, पृ.18–22।
33. कामेश्वर प्रसाद, पूर्व–उद्धृत, पृ. 3।
34. एम.एस. रंधावा, पूर्व–उद्धृत, 1980 विष्णु मित्तरे, पूव–उद्धृत, 1974।
35. रेबा रे, पूव्र–उद्धृत, पृ. 258।
36. वही, पृ. 259।
37. वही, पृ. 59–60।
38. कामेश्वर प्रसाद, पूर्व–उद्धृत, पृ.4।
39. आई.ए.आर. 1977–78, पृ. 17–18।
40. राजीव कुमार सिन्हा सोशल फार्मेशन इन एंशियन्ट बिहार–एफ्रेश लुक, दरभंगा, 1964।
41. ई.एच.सी. बाल्श ए नोट ऑन स्टोन इम्प्लीमेन्ट्स इन दि दार्जिलिंग डिस्टिक्ट, जे.ए.एस.वी., जिल्द, 58, संख्या–3, 1904, पृ. 20–24।
42. आई.ए. आर. 1962–63, पृ. 43।
43. वही, 1966–67, पृ. 44–45।
44. पी.सी. दास. गुप्ता, प्रागैतिहासिक बंगाल, कलकत्ता, 1981, पृ. 77।
45. वही, पृ. 77–80।
46. पी.सी.दास. गुप्ता, एक्सकेवेशन ऑफ बानगढ़ कलकत्ता, 1948।
47. एम. चक्रवर्ती इम्प्लीमेन्ट्स इन वेस्ट बंगाल, कलकत्ता, 1967, पृ. 98–107
48. रेबा रे, पूर्व–उद्धृत, पृ. 274।
49. वही, पृ. 275।
50. आई. ए. आर. 1954, पृ. 19; 1973–74, पृ. 33।
51. एम. चक्रवर्ती पूर्व–उद्धृत, पृ. 98–107।
52. वही
53. रेबा रे, पूर्व–उद्धृत, पृ. 278।
54. आर. पी. चंदा बेदिपुर एण्ड राजगीर वाप्रिक रिपोर्ट, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, 1923–24, पृ. 100।
55. वी. एन. मिश्रा तथा एम. एस. मेटपूर्व–उद्धृत, पृ. 91–92।
56. सर जॉन लुब्बाक दि स्टोन टूल्स ऑफ असम एथेनियुम, 1867।
57. ई. एच. स्टील सेल्ट्स फाउन्ड अमंग दी नामरूंग नागास, पी. ए.एस.बी. 1870, पृ. 267–68।
58. लेफ्िअनेंट बैरन, नोट ऑन स्टोन इम्प्लीमेन्ट्स फ्राम दि नागा हिल्स, जे. आर. ए. आई. पृ. 61–62।
59. एल. ए. नारायण पुव्र उद्धृत, 1979, पृ. 302।

60. जे. कोगिन ब्राउन कैटलॉग ऑफ प्री हिस्टॉरिक एण्टीक्विटीज इन दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, 1917, पृ. 130।
61. एल. ए. नारायण पूर्व उद्धृत, 1979, पृ. 302।
62. ए.एच. दानी, पूर्व उद्धृत, पृ. 41–77।
63. टी. एस. शर्मा प्री–हिस्टॉरिक आर्कियोलॉजी ऑफ असम, लंदन, 1966, पृ. 99
64. दानी, पूर्व उद्धृत, पृ. 89।
65. वही।
66. वी.डी. कृष्णास्वामी, एशियन्ट इण्डिया संख्या 16, दिल्ली, 1960, पृ. 25–64।
67. के.सी.जैन, पूर्व उद्धृत, पृ. 107।
68. एच. डी. संकालिया, पूर्व उद्धृत, पृ. 1974, पृ. 283–298।
69. पुरातत्व संख्या–19 पृ. 9।
70. 70. बी.पी. सिन्हा पौटरीज इन एंशियन्ट इण्डिया, पटना, पृ. 102–108।
71. वही,
72. आई. ए. आर., 1964–65, पृ. 1–85।
73. वही, 1963–64, पृ. 60।
74. वही,
75. वही, 1964–65, पृ. 1–85।
76. टी.टी. चांग दि राइस कल्चर, 1977, पृ. 146।
77. डॉ. इयान ग्लैवोर का पूना में प्रस्तुत लेख सम प्रॉब्लम रिलेटिंग टू दी डामेस्टिकेशन ऑफ राइस इन एशिया।
78. बी. डी. मिश्रा, 1977, पृ. 107–122।
79. जी. आर. शर्मा, हिस्टी टू प्री हिस्ट्री आक्रियोलॉजी ऑफ दि गंगा भैली एण्ड दि विंध्यास, इलाहाबाद, पृ. 100।
80. एम. डी. एन. साही, पूर्व उद्धृत, पृ 45।
81. एस. पी. दास गुप्ता जे. बी. आर. एस. पटना 1963, पृ. 147–166।
82. माखन लाल, सेटलमेन्ट हिस्ट्री एण्ड राइज ऑफ सिविलाइजेशन इन गंगा–यमुना दो आब, दिल्ली, 1954, पृ. 51।
83. स्अुअर्ट पिग्गट, प्री–हिस्टॉरिक इण्डिया, पेंग्विन, 1950, पृ. 238।
84. हाइने गेल्दनर, पूर्व उद्धृत, पृ. 87–113।
85. गुप्ता, पूर्व उद्धृत, 1963, पृ. 147–166।
86. कामेश्वर प्रसाद पूर्व उद्धृत,
87. जैन पूव्र उद्धृत, पृ. 158–168।
88. आई.ए. आर. 1981–82, पृ. 13–14।